गतांक से आगे...

सार्वभौमिक बंधुत्व का आधार मित्रता

* ब्रह्माकुमार नरेश, मुजफ्फरनगर

अहंकारवश मित्र शत्रु बन जाते हैं और स्वार्थवश शत्रु मित्र बन जाते हैं। मित्रता की परख लम्बे समय में हो पाती है परन्तु शत्रुता का पता तो पल भर में चल जाता है जैसे कि मधुर फूल लम्बे समय में खिलते हैं और घास कुछ ही समय में उग आती है। धैर्य व सहनशीलता का गुण फूल के समान है, जो मित्रता की सुगंध है। उद्दंडता व अहंकार का अवगुण घास के समान है, जो कि शत्रुता की जड़ है। घास नष्ट होने पर भी इसकी जड़ें पुन: घास पैदा कर देती हैं। फूल देव प्रतिमाओं के काम आते हैं और घास पशुओं के। मित्र को आड़े वक्त में कुछ कहना नहीं पड़ता, वह तो आवश्यकता पड़ने पर स्वयं ही मददगार बन कर सामने आ जाता है। उसी प्रकार शत्रु को ना छेड़े जाने पर भी वह अपनी दुर्भावना को व्यक्त करने में देर नहीं करता और हानि पहुंचाने का कोई भी मौका नहीं गंवाता।

सतयुग में सभी एक-दूसरे के मित्र थे

जिस भी मनुष्य में प्रेम का गुण मौलिक रूप में कार्य कर रहा है, वह तो मिलते ही मित्र जैसा व्यवहार करता है। दूसरा कैसा भी हो, उसे वह अपनी मित्रता के आलिंगन में समेट लेता है। रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार Depth of friendship does not depend on length of acquaintance अर्थात् मित्रता की गहराई मित्रों की लम्बी जान-पहचान से नहीं आंकी जा सकती। मित्रता तो अच्छे संस्कार होने पर तत्काल कायम हो जाती है। ऐसे में दूसरा यदि प्रेम-विहीन व्यक्ति है, तो भी पहले वाले को फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उसे तो सभी मित्र दिखाई पड़ते हैं। सतयुग में चूंकि सभी प्रेम-स्वरूप थे अत: वहां सभी एक-दूसरे के मित्र थे।

गांधीजी ने एक बार कहा था कि मैं एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच स्थायी शत्रुता की बात नहीं सोच सकता क्योंकि मैं पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखता हूं। मैं इस आशा को लेकर जीवित हूं कि यदि इस जन्म में नहीं तो किसी दूसरे जन्म में मैं समूची मानवता को मैत्रीपूर्वक गले लगा सकूंगा। आज ब्रह्माकुमार-कुमारियां भी समूची मानवता को मैत्रीपूर्वक गले ही तो लगा रहे हैं। यह एकमात्र ऐसी ईश्वरीय संस्था है जहां छोटा हो या बड़ा, गरीब हो या अमीर, हिन्दू हो या मुसलमान-ईसाई, भारत में हो या विदेश में, सभी को नि:शुल्क ज्ञान व प्रेम बांटा जाता है।

शक्तियाँ हैं ईश्वर प्रदत्त, अवगुण हैं माया प्रदत्त

मित्रों के बीच भाषा से ज्यादा भासना व आसुरी अवगुणों से ज्यादा दैवी गुण काम करते हैं। एक सहनशीलता का गुण, ईर्ष्या, द्वेष, अपशब्द, अपमान, मनमुटाव, आवेश, उपेक्षा, तिरस्कार जैसे कितने ही अवगुणों का सामना कर सकता है। एक-एक आत्मिक गुण या शक्ति अनेक विकारों पर भारी पड़ती है क्योंकि आत्मिक गुण व शक्तियां हैं ईश्वर प्रदत्त जबकि अवगुण व विकार हैं माया या रावण प्रदत्त। ईश्वर की भक्ति आधा कल्प चलती है और ईश्वर से प्राप्त वर्सा अगले आधा कल्प तक कार्य करता है परन्तु अवगुण व विकार तो मात्र आधे कल्प ही चलते हैं। इस प्रकार ईश्वरीय कार्य में शाश्वतता है और आसुरी कार्य में है सीमाबद्धता। रावण का धूम-धड़ाका, चल रहे संगमयुग की समाप्ति के पहले ही बुझ जाता है। रावण की मित्रता मनुष्यों को काफी सुहाती है क्योंकि उससे उन्हें दैहिक सुख, वैभव, भोग-विलास आदि मिलते हैं बिना किसी प्रयास व संयम के। रावण निरन्तर दुख व अशान्ति देता रहता है परन्तु ऐसी माया फैलाए रखता है कि मनुष्य उसी

में सुख व शान्ति ढूँढ़ते रहते हैं जन्म-जन्म। परन्तु 63 जन्मों तक मित्रता का भ्रम फैलाने वाला रावण अन्तिम 63वें जन्म में ईश्वरीय शक्ति से परास्त हो जाता है।

मित्र वही जो दुख में बिना बुलाए आ जाये

अभी शिव परमात्मा संसार के सभी मनुष्यों से हर सम्बन्ध निभाने को उपलब्ध हैं। सुखी मनुष्यों ने उसे सतयुग व त्रेतायुग में बुलाया ही नहीं। कहावत है कि मित्र वही, जो सुख में बुलाने पर आए और दुख में बिना बुलाए ही आ जाये। दुख में परममित्र ईश्वर को बुलाने का साधन है उसका यथार्थ रीति स्मरण करना। यह परमपिता शिव की विशेष अनुकम्पा ही है, जो उसने कलियुग के अंत में आकर अपना परिचय दिया और बताया कि उसे किस रीति याद करना है। एक नवजात शिशु भी अपनी मां को याद करना स्वयं सीख लेता है परन्तु मन-बुद्धि व शरीर से विकसित मनुष्य को अपने परमपिता को याद करना, स्वयं उस परमपिता को आकर सिखाना पड़ता है। फिर यदि सिखाए जाने के बाद भी वह याद न कर पाये, तो इसका कारण ही है रावण से निभाई जा रही मित्रता। यह एक सत्य है कि एक साथ रावण व परमपिता शिव, दोनों से मित्रता नहीं निभाई जा सकती। दो नाव पर पैर रखने वाले की दुर्गति ही होती है। यदि आकाश की ऊंचाई या सागर की गहराई जैसा सतयुगी भाग्य बनाना है तो मटके जितने मायावी-भाग्य को त्यागना ही पड़ेगा। यदि मटके में भरे चनों को मुट्ठी में पकड़ रखा है तो उन्हें छोड़ने पर ही हाथ बाहर आकर असीम भाग्य का आलिंगन कर सकता है। दु:खमय जीवन भी मित्र के आलिंगन से सुखद बन जाता है। सुखद जीवन भी शत्रु के पदार्पण से दुख का अनुभव कराता है।

शत्रु का कल्याण करना अर्थात् उसे मित्र बनाना

गुप्त शत्रुता अर्थात् ऊपर से मित्रता दिखाना और अंदर से शत्रुता रखना। चन्द्रगुप्त ने नंद वंश का नाश कर राज्य पाया। उसका जब राजतिलक समारोह चल रहा था तो गुरु चाणक्य गायब थे। बाद में पता चला कि नंद राजा के समय के एक मंत्री आमर्त्य ने गुप्त शत्रुता के वश षड्यंत्र रचा था कि राजतिलक समारोह में भारी तबाही मचाई जाए। परन्तु चाणक्य उस गुप्त शत्रु को पहचान गए थे और उससे युद्ध कर रहे थे। राजतिलक समारोह के बाद जब आमर्त्य को कैद कर लाया गया, तो चन्द्रगुप्त उसे कठोर सज़ा देना चाहते थे परन्तु चाणक्य ने आमर्त्य को महामंत्री बनवा दिया। आमर्त्य ने रो कर कहा कि आपने मेरे शरीर को ही नहीं, आत्मा को भी जीत लिया है। तो शत्रु का कल्याण किया जाना उसे मित्र बना देता है। जिसने शत्रुतावश गहन दुख दिया हो, उसकी भी भलाई करना तीव्र गति से आध्यात्मिक उन्नति का साधन है। शिव से योग-युक्त पुरुषार्थी ऐसा सहज ही कर पाता है।

मैत्री भावना सभी के प्रति

गुप्त शत्रुता की तरह सर्व के प्रति प्रत्यक्ष मित्रता भी हुआ करती है। विवेकानन्द अपनी किशोरावस्था में स्वास्थ्य के प्रति काफी ज़ागरूक थे और एक व्यायामशाला में नित्य जाया करते थे। एक दिन जब विवेकानन्द अपने मित्रों के साथ व्यायामशाला में एक झूला ठीक कर रहे थे तो उसी समय एक अंग्रेज नाविक विवेकानन्द व उनके मित्रों से किसी बात पर झगड़ा करने लगा। बात बढ़ती चली गई। इसी बीच व्यायामशाला का एक खम्भा उस अंग्रेज के सिर पर गिर गया जिससे वह ज़ख्मी हो कर गिर पड़ा। यह देख सभी मित्र घबराकर भाग खड़े हुए परन्तु विवेकानन्द ने अपनी कमीज़ फाड़ कर उसकी पट्टी बनाई और ज़ख्मी अंग्रेज के सिर पर बांध दी। विवेकानंद ने उसे पंखा हिलाकर उसकी तब तक सेवा की जब तक उसे होश नहीं आ गया। वह अंग्रेज बाद में विवेकानंद का घनिष्ठ मित्र बन गया। इससे यह सीखने को मिलता है कि आप भले ही सम्बन्ध-सम्पर्क वाले कुछ सीमित व्यक्तियों से मित्रता रखते हों परन्तु अन्दर मैत्री-भावना सभी के प्रति प्रत्यक्ष दिखाई देनी चाहिए।

(क्रमशः)